राजस्थानी दिगम्बर जैन गद्यकार

☐ डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल,

टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४ (राज०)

विषय के विवेचन और गूढ़ भावों की स्पष्ट एवं बोधगम्य अभिव्यक्ति के लिये पद्य की तुलना में गद्य अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी माध्यम है। प्राचीन काल में पद्य का महत्त्व कितना ही क्यों न हो, किन्तु आधुनिक जीवन के लिये गद्य अपरिहार्य है, उसका क्षेत्र अपरिमित है। पद्य के समान वह छन्दों की सीमा में बँधा नहीं रहता, वह निर्बन्ध होता है, अतः अभिव्यक्ति में अपूर्णता नहीं रह पाती। गद्य की इसी विशेषता के कारण आज का पद्य भी छन्द की सीमा से मुक्त होता जा रहा है, गद्यात्मक होता जा रहा है। पद्य की अपेक्षा गद्य सहज एवं सरल होता है।

गद्य में भर्ती के शब्दों की आवश्यकता नहीं होती और न ही शब्दों को तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है, अतः भाषा का परिमार्जन सहज हो जाता है। एक ही लेखक का गद्य उसके पद्य की अपेक्षा अधिक परिमार्जित होता है। पद्य में भाषा की तोड़-मोड़ बहुत अधिक होती है। लय और छन्द के अनुरोध के कारण पद्य में यह दोष एक तरह से क्षम्य होता है किन्तु गद्य में ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं होती। यही कारण है कि गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है—"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"।

हिन्दी के अन्तर्गत सामान्यतः पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी तथा पहाड़ी भाषाओं और इनकी बोलियों की गणना की जाती है। इस प्रकार इनमें से किसी भी बोली या भाषा में लिखा गया गद्य 'हिन्दी गद्य' कहलायेगा।

प्रकृत में हिन्दी गद्य-साहित्य के अन्तर्गत राजस्थानी प्रतिनिधि दिगम्बर जैन गद्यकारों के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का संक्षिप्त परिचय देना अभीष्ट है।

मध्यकाल में आते-आते संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश सामान्यजन की समझ के बाहर हो चुकी थी और हिन्दी पूर्णतः जनभाषा बन चुकी थी। जैन साहित्यकार सदा ही जनभाषा में अपने विचार जन-जन तक पहुंचाते रहे हैं, यही कारण है कि उन्होंने सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों की हिन्दी वचनिकाएं लिखना आरम्भ कर दिया था।

जैन हिन्दी साहित्य का निर्माण-केन्द्र प्रधानतः जयपुर, आगरा और दिल्ली एवं इनके आस-पास का प्रदेश रहा है। अतः जैन साहित्यकारों द्वारा लिखा गया साहित्य राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों में पाया जाता है। कहीं-कहीं तो दोनों भाषाएँ इतनी एकमेक होकर आई है कि उनके भेद करना संभव नहीं है। महान पण्डित टोडरमल और दौलतराम कासलीवाल का गद्य इसका स्पष्ट प्रमाण है।

डा० गौतम लिखते हैं—"जयपुर के दिगम्बर जैन लेखकों ने संस्कृत-प्राकृत में लिखित अपने बहुत से धर्मग्रन्थों का हिन्दी—गद्यानुवाद किया है। उत्तर प्रदेश के भी दिगम्बर जैनों ने अपने संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य किया है"।[1]

---

१. हिन्दी गद्य का विकास : डा० प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर—३, पृष्ठ २१०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थान में गद्य लेखन की परम्परा अपभ्रंश काल से लेकर आज तक अखण्ड रूप से चली आ रही है। राजस्थानी गद्य-साहित्य के सम्बन्ध में राजस्थानी साहित्य के विशिष्ट विद्वान श्री उदयसिंह भटनागर के निम्नलिखित विचार द्रष्टव्य हैं :—

"राजस्थानी साहित्य की विशेषता यह है कि जहाँ हिन्दी-साहित्य में गद्य का प्राचीन रूप नहीं के बराबर है, वहाँ राजस्थानी में गद्य-साहित्य मध्यकाल से ही पूर्ण विकसित रूप में मिलता है। इस गद्य का कब आरम्भ हुआ होगा, यह निश्चित रूप से कहने को अभी कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है, पर यह तो स्पष्ट है कि राजस्थानी साहित्यकारों में "बात" "वार्ता" या "कहानी" तथा "ख्यात" लिखने की प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है। उपलब्ध साहित्य इस बात का द्योतक है कि बात गद्य और पद्य दोनों में साथ-साथ लिखी जाने लगी थी। राजस्थानी का व्यवस्थित रूप में विकसित गद्य-साहित्य वि०सं० १५०० से पूर्व का नहीं मिलता"।[1]

इससे यह स्पष्ट है कि गद्य-साहित्य के इतिहास में उसके आरम्भकाल से ही दिगम्बर जैन गद्यकारों का उसके विकास और परिमार्जन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सम्बन्ध में डा० प्रेमप्रकाश गौतम के विचार द्रष्टव्य हैं :—

"वस्तुत: प्राचीन राजस्थानी गद्य के निर्माण, रक्षण और विकास में जैन समाज का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जैन लेखकों ने अपने धार्मिक विचारों को जनता तक पहुँचाने और अपने प्राचीन (प्राकृत और संस्कृत में लिखित) धर्मग्रन्थों की व्याख्या के लिये लोक-भाषा का सहारा लिया। मौलिक गद्य का भी निर्माण इन लोगों ने किया"।[2]

राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में आज भी अनेक महत्त्वपूर्ण गद्यग्रन्थ शोधार्थियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस दिशा में शोध-खोज की महती आवश्यकता है और लगन से की गई शोध साहित्य-इतिहास बदल देने वाला परिणाम ला सकती है।

यद्यपि दिगम्बर जैन गद्यकारों की अनेक छुट-पुट रचनाएँ १५वीं और १६वीं शती में लिखी गईं, तथापि सर्वप्रथम प्रौढ़ रचना पाण्डे राजमल्लजी की 'समयसारकलश' पर लिखी गई 'बालबोधिनी टीका' प्राप्त होती है।

पाण्डे राजमल्लजी—राजस्थान के जिन प्रमुख विद्वानों ने आत्म-साधना के अनुरूप साहित्य आराधना को अपना जीवन अर्पित किया है उनमें पाण्डे राजमल्लजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका समय सोलहवीं शती ईसवी का उत्तरार्ध है।

ये जैन दर्शन, सिद्धान्त और अध्यात्म के तो पारगामी विद्वान् थे ही, इनका संस्कृत भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। संस्कृत भाषा में लिखे गये इनके ग्रन्थों से उनके भाषा एवं विषयगत ज्ञान की प्रौढ़ता ज्ञात होती है। एक ओर 'अध्यात्मकमलमार्तण्ड" और "पंचाध्यायी" जैसे गम्भीर तात्त्विक विवेचन के भरे ग्रन्थराज आपकी लौह लेखनी से प्रसूत हुए है, वहाँ दूसरी ओर "जम्बूस्वामी चरित्र" (ई० सन् १५७६) जैसे कथाग्रन्थ एवं "लाटी संहिता" (सन् १५८४) जैसे आचार ग्रन्थ भी आपने लिखे हैं। एक 'छन्दोविद्या' नामक पिंगल ग्रन्थ भी आपने लिखा है। उक्त कृतियाँ सभी परिमार्जित संस्कृत भाषा में हैं, अत: उनका विस्तृत विवेचन यहाँ उपयुक्त न होगा। राजस्थानी (हिन्दी) गद्य में लिखित उनका एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ है 'समयसारकलश' की "बालबोधिनी टीका"।

कहाकवि बनारसीदास ने 'नाटक समयसार' की प्रशस्ति में आपको आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थराज 'समयसार' का मर्मज्ञ घोषित किया है।

---

१. हिन्दी साहित्य : द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, पृ० ५१६.

२. हिन्दी गद्य का विकास, डा० प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्यनगर, कानपुर, पृ० १२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थराज 'समयसार' पर आचार्य अमृतचंद्र ने 'आत्मख्याति' नामक बहुत ही गम्भीर संस्कृत टीका लिखी है, उसी के बीच-बीच उन्होंने संस्कृत भाषा के विभिन्न छन्दों में २७८ पद्य लिखे हैं, उन्हें 'समयसारकलश' कहा जाता है। पाण्डे राजमल्लजी ने उस 'समयसारकलश' के भावों को स्पष्ट करने वाली 'बालबोधिनी' टीका राजस्थानी हिन्दी भाषा में लिखी है। जिसके माध्यम से उस समय अध्यात्म का प्रचार घर-घर में हो गया था। उसी के आधार पर आगे चलकर महाकवि बनारसीदास ने अपने लोकप्रिय पद्यग्रन्थ 'नाटक समयसार' की रचना की है। जैसा कि उन्होंने स्वयं 'नाटक समयसार' की प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख किया हैं :—

पांडै राजमल्ल जिनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।
तिन्हे ग्रन्थ की टीका कीनी, बालबोध सुगम कर दीनी ॥
इह विधि बोध वचनिका फैली, समै पाइ अध्यात्म सैली।
प्रगटी जगत मांहि जिनवाणी, घर-घर नाटक कथा बसाली ॥
नाटक समैसार हित जी का, सुगत रूप राजमल टीका।
कवित बृद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रन्थ पढै सब कोई ॥
तब बनारसी मन में आनी, कीजै तो प्रगटे जिनवानी।
पंच पुरुष की आज्ञा लीनी, कवित्त बद्ध की रचना कीनी ॥

महाकवि बनारसीदास को आत्माभिमुख करने का श्रेय उक्त बालबोधिनी टीका को ही प्राप्त है। राजस्थानी के प्रसिद्ध विद्वान् अगरचंद नाहटा ने इस टीका को हिन्दी जैन गद्य की प्राप्त रचनाओं में प्राचीनतम गद्य रचना माना है एवं पांडे राजमल्ल की इस देन को उल्लेखनीय माना है।[1]

यह टीका पुरानी शैली पर खण्डान्वयी है। शब्द पर्याय देते हुए भावार्थ लिखा गया है। यद्यपि इसकी भाषा संस्कृतपरक है, पर कठिन नहीं। वाक्यों में प्रवाह बराबर पाया जाता है। इस बालाबोधिनी भाषा टीका का गद्य इस प्रकार है :—

"यथा कोई जीव मदिरा पीवाइ करि अविकल कीजै छै, सर्वस्व छिनाई लीजै छै। पद ते भ्रष्ट कीजै छै तथा अनादि तांई लेइ करि सर्व जीव राशि रागद्वेष तै ज्ञानावरणादि कर्म को बंध होई छै।[2]

पांडे हेमराज—पांडे राजमल्लजी की 'समयसार कलश' पर लिखी बालबोधिनी टीका से प्रेरणा पाकर आगरा निवासी कँवरपाल जी ने इसी प्रकार की टीका कुन्दकुन्दाचार्य के दूसरे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'प्रवचनसार' की टीका करने का आग्रह पांडे हेमराज से किया, परिणामस्वरूप वि० सं० १७०९[3] तदनुसार ईस्वी, सन् १६५२ में पांडे हेमराज जी द्वारा 'प्रवचनसार' पर 'बालबोध' भाषा टीका लिखी गई। उसकी प्रशस्ति में निम्नानुसार उल्लेख पाया जाता है :—

बाल बोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुनहु कहूँ मैं तैसे।
नगर आगरे में हितकारी, कंवरपाल ग्याता अविकारी ॥
तिन विचार जिय में इह कीनी, जो भाषा इह होई नवीनी।
अल्प बुद्धि भी अरथ बखाने, अगम अगोचर पद पहिचाने ॥
यह विचार मन में तिन राखी, पांडे हेमराज सो भाखी।
आगै राजमल्ल जी नै कीनी, समयसार भाषा रस भीनी ॥
अब जो प्रवचन की ह्व भाषा, सौ जिनधर्म बधै बहु साखा।
तातै काहू विलम्ब न कीजै, परम भावना अंगफल लीजै ॥[4]

१. हिन्दी साहित्य, द्वि० खं०, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, पृ० ४७६
२. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, पृ० ४६७-७७
३. प्रवचनसार भाषा टीका, प्रशस्ति, छन्द ११
४. वही, छन्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचनसार के अतिरिक्त इन्होंने पंचास्तिकाय संग्रह, नयचक्र, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि पर भी वचनिकाएँ लिखी हैं।[1] इसकी भाषा-शैली के सम्बन्ध में डॉ० गौतम लिखते हैं :—

"वाक्य सीधे और सुग्राह्य हैं। जो—सो, विषै, करि इत्यादि पुराने शब्द इस वचनिका में भी हैं। गद्य में शैथिल्य और पण्डिताऊपन भी है।[2]" इनकी भाषा एवं गद्य का नमूना इस प्रकार है :—

"धर्मद्रव्य सदा अविनासी टंकोत्कीर्ण वस्तु है। यद्यपि अपर्णं अगुरलघु गुणनि करि षट्गुणी हानि वृद्धि रूप परिणवै है परिणाम करि उत्पाद व्यय संयुक्त है तथापि अपने ध्रौव्य स्वरूप सो चलना नांही। द्रव्य तिसही का नाम है, जो उपजै विनसै थिर रहे।[3]

बनारसीदास—महाकवि बनारसीदास यद्यपि मुख्य रूप में कवि (पद्यकार) हैं तथापि उनकी दो लघु कृतियाँ गद्य में भी प्राप्त होती हैं, वे हैं 'परमार्थ वचनिका' और 'निमित्त-उपादान चिट्ठी'। साहित्यिक महत्त्व की अपेक्षा हिन्दी भाषा के विकास की दृष्टि से इनका ऐतिहासिक महत्व है। इनमें कवि ने अत्यन्त सुलझी हुई व्याख्या प्रधान भाषा का प्रयोग किया है। उनके गद्य का नमूना इस प्रकार है :—

"मिथ्यादृष्टि जीव अपनौ स्वरूप नहीं जानतो तातै पर स्वरूप विषैमगन होइ करिकार्य मानतु है, ता कार्य करतौ छतौ अशुद्ध व्यवहारी कहिये। सम्यग्दृष्टि अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमाण करि अनुभवत है। परसत्ता पर स्वरूप सौं अपनौ कार्य नाहीं मानतौसंतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूप कौ ध्यान विचाररूप किया करतु है ता कार्य करतौ मिश्र व्यवहारी कहिए। केवलज्ञानी यथाख्यात चारित्र के बल करि शुद्धात्म स्वरूप को रमनशील है तातै शुद्ध व्यवहारी कहिये, जोगारूढ़ अवस्था विद्यमान है तातै व्यवहारी नाम कहिए। शुद्ध व्यवहार की सरहद त्रयोदशम गुणस्थानक सौ लेई करि चतुर्दशम गुणस्थान पर्यन्त जाननी। असिद्धत्व परिगमनत्वात् व्यवहारः।"

"इन कान कौ व्यारों कहां ताईं लिखिए, कहां तांई कहिये। वचनातीत, इन्द्रियातीत, ज्ञानातीत तातें यह विचार बहुत कहा लिखहिं। जो ग्याता होइगो सो थोरो ही लिख्यो बहुत करि समुझैगो, जो अज्ञानी होइगो सो यह चिट्ठी सुनैंगो सही परन्तु समझैगो नहीं। यह वचनिका यथा का यथा सुमति प्रवीन केवली वचनानुसारी है। जो याहि सुनैंगो, समुझैगो, सरदहैगो, ताहि कल्याणकारी है भाग्य प्रमाण।[4]

महाकवि बनारसीदास का स्थान हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ये महाकवि तुलसीदास के समकालीन थे और इनका प्रसिद्ध काव्य 'नाटक समयसार' तत्कालीन धार्मिक समाज में तुलसीदास के रामचरितमानस के समान ही लोकप्रिय था। उनके छन्दों को लोग रामायण की चौपाइयों के समान ही गुनगुनाया करते थे। आज भी जैन समाज में 'नाटक समयसार' अत्यन्त लोकप्रिय रचना के रूप में स्थान पाये हुए हैं।

आपके द्वारा लिखा गया 'अर्द्धकथानक' हिन्दी—आत्मकथा साहित्य की सर्वप्रथम रचना है जिसमें कवि का आरम्भ से ५५ वर्ष तक का जीवन दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित है। आत्मकथा साहित्य की प्रथमकृति होने पर भी प्रौढ़ता को लिए हुए है। आपकी फुटकर रचनाएँ 'बनारसी विलास' में संकलित हैं। 'नाममाला' नामक पद्यबद्ध एक कोश ग्रन्थ भी है।

आपका जीवन अनेक उतार-चढ़ावों को लिए हुए है। आपका जन्म विक्रम सं० १६४३, माघ शुक्ला, ११ रविवार के दिन जौनपुर में श्रीमाल कुलोत्पन्न लाला खरगसेन जी के यहाँ हुआ था।

१. हिन्दी गद्य का विकास : डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्यनगर, कानपुर—३, पृ० १७४

२. उपरोक्त

३. वही, पृ० १७४-७५

४. अर्द्ध कथानक : बनारसीदास, संशोधित साहित्य माला, ठाकुर द्वार, बम्बई, भूमिका, पृ० ७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके जीवन के सम्बन्ध में हम अनुभवी लेखक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करना उपयुक्त समझते हैं—

"कोई तीन सौ वर्ष पहले की बात है। एक भावुक हिन्दी कवि के मन में नाना प्रकार के विचार उठ रहे थे। जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव वे देख चुके थे। अनेक संकटों में से वे गुजर चुके थे, कई बार बाल-बाल बचे थे, कभी चोर डाकुओं के हाथ जान-माल खोने की आशंका थी, तो कभी सूली पर चढ़ने की नौबत आने वाली थी, और कई बार भयंकर बीमारियों से मरणासन्न हो गये थे। गार्हस्थिक दुर्घटनाओं का शिकार उन्हें कई बार होना पड़ा था। एक के बाद एक उनकी दो पत्नियों की मृत्यु हो चुकी थी। और उनके नौ बच्चों में से एक भी जीवित नहीं रहा था। अपने जीवन में उन्होंने अनेक रंग देखे थे—तरह-तरह के खेल खेले थे—कभी वे आशिकी के रंग में सराबोर थे, तो कभी धार्मिकता उन पर सवार थी, और एक बार तो आध्यात्मिक फिट के वशीभूत होकर वर्षों के परिश्रम से लिखा गया अपना नवरस का ग्रन्थ गोमती नदी के हवाले कर दिया था। संवत् १६६८ में अपनी तृतीय पत्नी के साथ बैठे हुए यदि उन्हें किसी दिन आत्मचरित्र का विचार सूझा हो तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं—

नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोई।
ज्यों तरवर पतझार ह्वै, रहे ठूठ से होई॥

अपने जीवन के पतझड़ के दिनों में लिखी हुई इस छोटी सी पुस्तक से यह आशा उन्होंने स्वप्न में भी न की होगी कि वह कई सौ वर्ष तक हिन्दी जगत में उनके यश:शरीर को जीवित रहने में समर्थ होगी।[1]

कविवर बनारसीदास के जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए डा० रवीन्द्रकुमार जैन के शोध प्रबन्ध 'कविवर बनारसीदास, जीवन और कृतित्व'[2] का अध्ययन करना चाहिए।

दीपचन्द साह—दीपचन्द साह भी उन आध्यात्मिक विद्वानों में से थे जिन्होंने हिन्दी गद्य निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। वे खण्डेलवाल जाति के कासलीवाल गोत्र में जन्मे थे। अतः कई स्थानों पर उनका नाम दीपचन्द कासलीवाल भी लिखा मिलता है। ये पहिले सांगानेर में रहते थे किन्तु बाद में आमेर आ गये थे। ये स्वभाव से सरल, सादगी प्रिय और अध्यात्म चर्चा के रसिक विद्वान् थे।

आपके द्वारा रचित **'अनुभव प्रकाश'** (सं० १७८१—वि० १७२४ ई०), **'चिद्विलास'** (सं० १७७६—वि० १७२२ ई०)। **'आत्मावलोकन'** (सं० १७७७—वि० १७२० ई०) **परमात्म-प्रसंग, ज्ञानदर्पण, उपदेश रत्नमाला स्वरूपानन्द** नामक ग्रन्थ हैं।

ढूंढाहड़ प्रदेश के अन्य दिगम्बर जैन लेखकों की भाँति उनकी भाषा में ब्रज और राजस्थानी के रूपों के साथ खड़ी बोली के शब्द रूप है।[3] यद्यपि इनकी भाषा टोडरमल जैसे दिग्गज लेखकों की अपेक्षा कम परिमार्जित है तथापि वह स्वच्छ है एवं साधु वाक्यों में गम्भीर अर्थाभिव्यक्ति उसकी विशेषता है।

साहित्यिक मूल्यों की दृष्टि से इनकी रचनाओं का महत्त्व चाहे उतना न हो जितना तत्वचिन्तन एवं हिन्दी गद्य के निर्माण व प्रचार की दृष्टि से इनका कार्य अभिनन्दनीय है। हिन्दी गद्य की बाल्यावस्था में बहुत रचनाओं का गद्य में निर्माण कर इन्होंने इसकी रिक्तता को भरने का सफल प्रयास किया और इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योग भी दिया है। इनकी भाषा का नमूना निम्नानुसार है—

'जैसे बानर एक कांकरा के पड़े रौवे तैसे याके देह का एक अंग भी छीजे तो बहुतेरा रौवे। ये

---

१. पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, अर्द्धकथानक भूमिका, सं० नाथूराम प्रेमी

२. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

३. हिन्दी गद्य का विकास : डा० प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसन्धान प्रकाशन, पृ० १८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरे और मैं इनका झूठ ही ऐसे जड़न के सेवन तैं सुख मानैं। अपनी शिवनगरी का राज्य भूल्या, जो श्री गुरु के कहे शिवपुरी कौ संभालै, तो वहाँ का आप चेतन राजा अविनाशी राज्य करै।[1]

महापंडित टोडरमल—डा० गौतम के शब्दों में "जैन हिन्दी गद्यकारों में टोडरमलजी का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने टीकाओं और स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में दोनों प्रकार से गद्य निर्माण का विराट उद्योग किया है। टोडरमलजी की रचनाओं के सूक्ष्मानुशीलन से पता चलता है कि वे अध्यात्म और जैनधर्म के ही वेत्ता न थे अपितु व्याकरण, दर्शन, साहित्य और सिद्धान्त के ज्ञाता थे। भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था"।[2]

ईसवी की अठारहवीं सदी के अन्तिम दिनों में राजस्थान का गुलाबी नगर जयपुर जैनियों की काशी बन रहा था। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी की अगाध विद्वत्ता और प्रतिभा से प्रभावित होकर सम्पूर्ण भारत का तत्व-जिज्ञासु समाज जयपुर की ओर चातक दृष्टि से निहारता था। भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में संचालित तत्व-गोष्ठियों और आध्यात्मिक मण्डलियों में चर्चित गूढ़तम शंकाएँ समाधानार्थ जयपुर भेजी जाती थीं और जयपुर से पण्डित जी द्वारा समाधान पाकर तत्व जिज्ञासु समाज अपने को कृतार्थ मानता था। साधर्मी भाई ब्र० रायमल ने अपनी 'जीवन-पत्रिका' में तत्कालीन जयपुर की धार्मिक स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है—

> "तहाँ निरन्तर हजारों पुरुष स्त्री देवलोक की सी नाँई चैत्यालै आय महापुण्य उपारजै, दीर्घकाल का संचया पाप ताका क्षय करै। सौ-पचास भाई पूजा करने वारे पाईए, सौ पचास भाषा शास्त्र बांचने वारे पाईए, दस बीस संस्कृत शास्त्र वांचने वारे, सौ पचास जने चरचा करने वारे पाईए और नित्यान का सभा के शास्त्र वांचने का व्याख्यान विषै पांच सै सात सै पुरुष, तीन च्यारि सै स्त्रीजन, सब मिली हजार बारा सै पुरुष स्त्री शास्त्र का श्रवण करै बीस तीस बायां शास्त्राभ्यास करै, देश देश का प्रश्न इहां आवै तिना समाधान होय उहां पहुँचे, इत्यादि अद्भुत महिमा चतुर्थकाल या नग्र विषै, जिनधर्म की प्रवर्ति पाईए"।[3]

यद्यपि सरस्वती के वरद पुत्र का जीवन आध्यात्मिक साधनाओं से ओत-प्रोत है, तथापि साहित्यिक व सामाजिक क्षेत्र में भी उनका प्रदेय कम नहीं है। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल जी उन दार्शनिक साहित्यकारों एवं क्रान्तिकारियों में से हैं, जिन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में आई हुई विकृतियों का सार्थक व समर्थ खण्डन ही नहीं किया वरन् उन्हें जड़ से उखाड़ फेंका। उन्होंने तत्कालीन प्रचलित साहित्य भाषा ब्रज में दार्शनिक विषयों का विवेचक ऐसा गद्य प्रस्तुत किया जो उनके पूर्व विरल है।

पण्डितजी का समय ईसवी की अठारहवीं शती का मध्यकाल है। वह संक्रान्तिकालीन युग था। उस समय राजनीति में अस्थिरता, सम्प्रदायों में तनाव, साहित्य में श्रृंगार, धर्म में रूढ़िवाद, आर्थिक जीवन में विषमता एवं सामाजिक जीवन में आडम्बर—ये सब आपनी चरम सीमा पर थे। उन सबसे पण्डितजी को संघर्ष करना था, जो उन्होंने डटकर किया और प्राणों की बाजी लगाकर किया।

पण्डित टोडरमलजी गम्भीर प्रकृति के आध्यात्मिक महापुरुष थे। वे स्वभाव से सरल, संसार से उदास, धुन के धनी, निरभिमानी, विवेकी, अध्ययनशील, प्रतिभावान, बाह्याडम्बर विरोधी, दृढ़ श्रद्धानी, क्रान्तिकारी, सिद्धान्तों की कीमत पर कभी न झुकने वाले, आत्मानुभवी, लोकप्रिय, प्रवचनकार, सिद्धान्त ग्रन्थों के सफल टीकाकार एवं परोपकारी महामानव थे।

---

१. हिन्दी साहित्य, द्वि० खं०, भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, पृ० ४६५
२. हिन्दी गद्य का विकास : डा० प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्यनगर, कानपुर, पृ० १८८
३. पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व, परिशिष्ट, प्रकाशक : टोडरमल (पंडित) स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४ (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे विनम्र पर दृढ़, निश्चयी विद्वान् एवं सरल स्वभावी थे। वे प्रामाणिक महापुरुष थे। तत्कालीन आध्यात्मिक समाज में तत्त्वज्ञान सम्बन्धी प्रकरणों में उनके कथन प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत किये जाते थे। वे लोकप्रिय आध्यात्मिक प्रवक्ता थे। धार्मिक उत्सवों में जनता की अधिक से अधिक उपस्थिति के लिये उनके नाम का प्रयोग आकर्षण के रूप में किया जाता था। गृहस्थ होने पर भी उनकी वृत्ति साधुता की प्रतीक थी।

पण्डितजी के पिता का नाम जोगीदासजी एवं माता का नाम रम्भादेवी था। वे जाति से खण्डेलवाल थे और गोत्र था गोदीका, जिसे भौंसा व बडजात्या भी कहते हैं। उनके वंशज ढोलाका भी कहलाते थे। वे विवाहित थे पर उनकी पत्नी व सुसराल पक्ष वालों का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। उनके दो पुत्र थे—हरिचन्द और गुमानीराम। गुमानीराम भी उनके समान उच्चकोटि के विद्वान् और प्रभावक, आध्यात्मिकता के प्रवक्ता थे। उनके पास बड़े-बड़े विद्वान् भी तत्त्व का रहस्य समझने आते थे। पण्डित देवीदास गोधा ने "सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति" में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। पण्डित टोडरमलजी की मृत्यु के उपरान्त वे पण्डित टोडरमल द्वारा संचालत धार्मिक क्रान्ति के सूत्रधार रहे। उनके नाम से एक पंथ भी चला जो "गुमान-पंथ" के नाम से जाना जाता है।

पण्डित टोडरमलजी की सामान्य शिक्षा जयपुर की एक आध्यात्मिक (तेरापंथ) सैली में हुई, जिसका बाद में उन्होंने सफल संचालन भी किया। उनके पूर्व बाबा बंशीधरजी उक्त सैली के संचालक थे। पण्डित टोडरमलजी गूढ़तत्त्वों के तो स्वयंबद्ध ज्ञाता थे। 'लब्धिसार" व "क्षपणासार" की संदृष्टियाँ आरम्भ करते हुए वे लिखते हैं—"शास्त्र विषै लिख्या नाहीं और बतावने वाला मिल्या नाहीं।"

संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के अतिरिक्त उन्हें कन्नड़ भाषा का भी ज्ञान था। मूल ग्रन्थों को वे कन्नड़ लिपि में पढ़-लिख सकते थे। कन्नड़ भाषा और लिपि का ज्ञान एवं अभ्यास भी उन्होंने स्वयं किया। वे कन्नड़ भाषा के ग्रन्थों पर व्याख्यान करते थे एवं वे कन्नड़ लिपि भी लिख भी लेते थे। ब्र० रायमल ने लिखा है :—

> "दक्षिण देश सूं पांच सात और ग्रन्थ ताड़पत्रां विषै कर्णाटी लिपि में लिख्या इहां पधारे हैं, ताकूं मल जी बाचै हैं, वाका यथार्थ व्याख्यान करै हैं वा कर्णाटी लिपि में लिखि ले है।[1]

यद्यपि उनका अधिकांश जीवन जयपुर में ही बीता तथापि उन्हें अपनी आजीविका के लिए कुछ समय सिंघाणा रहना पड़ा। वहाँ वे दिल्ली के एक साहूकार के यहाँ कार्य करते थे।

परम्परागत मान्यतानुसार उनकी आयु कुल २७ वर्ष कही जाती रही, परन्तु उनकी साहित्यिक साधना, ज्ञान व प्राप्त उल्लेखों को देखते हुए मेरा यह निश्चित मत है कि वे ४७ वर्ष तक अवश्य जीवित रहे। इस सम्बन्ध में साधर्मी ब्र० रायमल द्वारा लिखित 'चर्चा—संग्रह' ग्रन्थ की अलीगंज (एटा, उ० प्र०) में प्राप्त हस्तलिखित प्रति के पृ० १७० का निम्नलिखित उल्लेख विशेष द्रष्टव्य है :—

> "बहुरि बारा हजार त्रिलोकसारजी की टीका वा बारा हजार मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ अनेक शास्त्रा के अनुस्वारि अर आत्मानुसासनजी की टीका वा हजार तीन यां तीना ग्रंथा की टीका भी टोडरमलजी सैंतालीस बरस की आयु पूर्ण करि परलोक विषै गमन की"।

पण्डित बखतराम शाह के अनुसार कुछ मदान्ध लोगों द्वारा लगाये गए शिवपिण्डी को उखाड़ने के आरोप के सन्दर्भ में राजा द्वारा सभी श्रावकों को कैद कर लिया गया था। और तेरापंथियों के गुरु, महान धर्मात्मा, महापुरुष पंडित टोडरमलजी को मृत्युदण्ड दिया गया था। दुष्टों के भड़काने में आकर राजा ने उन्हें मात्र प्राणदण्ड ही नहीं दिया बल्कि गंदगी में गड़वा दिया था।[2] यह भी कहा जाता है कि उन्हें हाथी के पैर के नीचे कुचलवा कर मारा था।[3]

---

१. इन्द्रध्वज विधान महोत्सव पत्रिका

२. बुद्धि विलास : बखतराम शाह, छन्द १३०३, १३०४.

३. (क) वीरवाणी : टोडरमल प० २८५, २८६. (ख) हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० ५००.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्डित टोडरमल जी आध्यात्मिक साधक थे। उन्होंने जैन दर्शन और सिद्धान्तों का गहन अध्ययन ही नहीं किया अपितु उसे तत्कालीन जनभाषा में लिखा है। इसमें उनका मुख्य उद्देश्य अपने दार्शनिक चिन्तन को जनसाधारण तक पहुँचाना था। पण्डितजी ने प्राचीन जैन ग्रन्थों की विस्तृत, गहन परन्तु सुबोध भाषा टीकाएँ लिखीं। इन भाषा टीकाओं में कई बार विषयों पर बहुत ही मौलिक विचार मिलते हैं जो उनके स्वतन्त्र चिन्तन के परिणाम थे। बाद में इन्ही विचारों के आधार पर उन्होंने कतिपय मौलिक ग्रन्थों की रचना भी की। उनमें से सात तो टीकाग्रन्थ हैं और पाँच मौलिक रचनाएं। उनकी रचनाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है—१. मौलिक रचनाएँ २. व्याख्यात्मक टीकाएं।

मौलिक रचनाएँ गद्य और पद्य दोनों रूपों में है। गद्य रचनाएं चार शैलियों में मिलती हैं—

१. वर्णनात्मक शैली
२. पत्रात्मक शैली
३. यंत्र रचनात्मक (चार्ट शैली)
४. विवेचनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली में समोसरण आदि का सरल भाषा में सीधा वर्णन है। पण्डितजी के पास जिज्ञासु लोग दूर-दूर से अपनी शंकाएँ भेजते थे, उनके सामाधान में वह जो कुछ लिखते थे, वह लेखन पत्रात्मक शैली के अन्तर्गत आता है। इसमें तर्क और अनुभूति का सुन्दर समन्वय है। इन पत्रों में एक पत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। सोलह पृष्ठीय यह पत्र 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' के नाम से प्रसिद्ध है। यन्त्र रचनात्मक शैली में चार्टों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जाता है। 'अर्थसंदृष्टि अधिकार' इसी प्रकार की रचना है। विवेचनात्मक शैली में सैद्धान्तिक विषयों को प्रश्नोत्तर पद्धति में विस्तृत विवेचन करके युक्ति व उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है। "मोक्षमार्ग प्रकाशक" इसी श्रेणी में आता है।

पद्यात्मक रचनाएँ दो रूपों में उपलब्ध हैं—

१. भक्तिपरक
२. प्रशस्तिपरक

भक्तिपरक रचनाओं में 'गोम्मटसार पूजा' एवं ग्रन्थों के आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण के रूप में प्राप्त फुटकर पद्यात्मक रचनाएँ हैं। ग्रन्थों के अन्त में लिखी गई परिचयात्मक प्रशस्तियाँ प्रशस्तिपरक श्रेणी में आती हैं।

पण्डित टोडरमलजी की व्याख्यात्मक टीकाएँ दो रूपों में पाई जाती हैं—१. संस्कृत ग्रन्थों की टीकायें, २. प्राकृत ग्रन्थों की टीकायें।

संस्कृत ग्रन्थों की टीकायें 'आत्मानुशासन भाषा टीका' और 'पुरुषार्थसिद्धि्युपाय भाषा टीका' है। प्राकृत ग्रन्थों में गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, लब्धिसार—क्षपणासार और त्रिलोकसार हैं, जिनकी भाषा टीकाएँ उन्होंने लिखी हैं।

गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, लब्धिसार और क्षपणासार की भाषा टीकायें पण्डित टोडरमल जी ने अलग-अलग बनाई थी परन्तु चारों टीकाओं को परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित एवं परस्पर एक का अध्ययन दूसरे के अध्ययन में सहायक जानकर उन्होंने उक्त चारों टीकाओं को मिलाकर एक कर दिया तथा उसका नाम **'सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका'** रख दिया।[1]

---

१. (क) बाबू ज्ञानचंद जी जैन, लाहौर, वि० सं० १८५४
(ख) जैन ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, बम्बई, सन् १९११ ईसवी
(ग) पन्नालाल जी चौथे, वाराणसी, वी० नि० सं० २४५१
(घ) अनन्तकीर्ति ग्रंथमाला, बम्बई, वी० नि० सं० २४६३
(ङ) सस्ती ग्रंथमाला, दिल्ली, १९६५ ईसवी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखी गई है। प्रारम्भ में इकहत्तर पृष्ठ की पीठिका है। आज नवीन शैली के सम्पादित ग्रन्थों में भूमिका का बड़ा महत्त्व माना जाता है। शैली के क्षेत्र में दो सौ बीस वर्ष पूर्व लिखी गई सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका की पीठिका आधुनिक भूमिका का आरम्भिक रूप है। किन्तु भूमिका का आद्य रूप होने पर भी उसमें प्रौढ़ता पाई जाती है, उसमें हकलापन कहीं भी देखने को नहीं मिलता। उसको पढ़ने से ग्रन्थ का पूरा हार्द खुल जाता है एवं इस गूढ़ ग्रन्थ के पढ़ने में आने वाली पाठक की समस्त कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। हिन्दी आत्मकथा—साहित्य में जो महत्त्व महाकवि पण्डित बनारसीदास के 'अर्द्ध कथानक' को प्राप्त है, वही महत्त्व हिन्दी भूमिका साहित्य में समग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका का है।

'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पण्डित टोडरमलजी का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का आधार कोई एक ग्रन्थ न होकर सम्पूर्ण जैन साहित्य है। यह सम्पूर्ण जैन साहित्य को अपने में समेट लेने का एक सार्थक प्रयत्न था, पर खेद है कि यह ग्रन्थराज पूर्ण न हो सका। अन्यथा यह कहने में संकोच न होता कि यदि सम्पूर्ण जैन वाङ्मय कहीं एक जगह सरल, सुबोध और जनभाषा में देखना हो तो 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' को देख लीजिये। अपूर्ण होने पर भी यह अपनी अपूर्वता के लिए प्रसिद्ध है। यह एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है, जिसके कई संस्करण निकल चुके हैं एवं खड़ी बोली में इसके अनुवाद भी कई बार प्रकाशित हो चुके हैं।'[१]

यह उर्दू[२] में भी छप चुका है। मराठी और गुजराती में इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।[3] अभी तक सब कुल मिलाकर इसकी ५१,२०० प्रतियाँ छप चुकी हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के दिगम्बर जैन मन्दिरों के शास्त्र भण्डारों में इस ग्रन्थराज की हजारों हस्तलिखित प्रतियाँ पाई जाती हैं। समूचे समाज में यह स्वाध्याय और प्रवचन का लोकप्रिय ग्रन्थ है। आज भी पण्डित टोडरमल जी दिगम्बर जैन समाज में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले विद्वान् हैं। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' की मूलप्रति भी उपलब्ध है।[४] एवं उसके फोटोप्रिण्ट करा लिये गये हैं जो जयपुर[५], बम्बई[६], दिल्ली[७] और सोनगढ़[८] में सुरक्षित हैं। इस पर स्वतन्त्र प्रवचनात्मक व्याख्याएँ भी मिलती हैं।[९]

यह ग्रन्थ विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखा गया है। प्रश्नोत्तरों द्वारा विषय को बहुत गहराई से स्पष्ट किया गया है। इसका प्रतिपाद्य एक गम्भीर विषय है, पर जिस विषय को उठाया गया है उसके सम्बन्ध में उठने वाली प्रत्येक शंका का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। प्रतिपादन शैली में मनोवैज्ञानिकता एवं मौलिकता पाई जाती है। प्रथम शंका के समाधान में द्वितीय शंका की उत्थानिका निहित रहती है। ग्रन्थ को पढ़ते समय पाठक के हृदय में जो प्रश्न उपस्थित होता है उसे हम अगली पंक्ति में लिखा पाते हैं। ग्रन्थ पढ़ते समय पाठक को आगे पढ़ने की उत्सुकता बराबर बनी रहती है।

वाक्य रचना संक्षिप्त और विषय-प्रतिपादन शैली तार्किक एवं गम्भीर है। व्यर्थ का विस्तार उसमें नहीं है,

---

१. (क) अ० भा० दि० जैन संघ मथुरा, वि० सं० २००५
   (ख) श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़, वि० सं० २०२३, २६, ३०
२. दाताराम चेरिटेबिल ट्रस्ट, १५८३, दरीबाकलां, दिल्ली, वि० सं० २०२७
३. (क) श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (ख) महावीर ब्र० आश्रम, कारंजा
४. दि० जैन मन्दिर दीवान भदीचंद जी, घी वालों का रास्ता, जयपुर, ५. वही, जयपुर।
६. श्री दि० जैन सीमंधर जिनालय, जवेरी बाजार, बम्बई।
७. श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, श्री दि० जैन मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली
८. श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़
९. आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी द्वारा किये गये प्रवचन "मोक्षमार्ग प्रकाश की किरणें" नाम से दो भागों में श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ से हिन्दी व गुजराती भाषा में कई बार प्रकाशित हो चुके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर विस्तार के संकोच में कोई विषय अस्पष्ट नहीं रहा है। लेखक विषय का यथोचित विवेचन करता हुआ आगे बढ़ने के लिए स्वयं ही आतुर रहा है। जहाँ कहीं भी विषय का विस्तार हुआ है वहाँ उत्तरोत्तर नवीनता आती गई है। वह विषय विस्तार सांगोपांग विषय-विवेचना की प्रेरणा से ही हुआ है। जिस विषय को उन्होंने छुआ उसमें "क्यों" का प्रश्नवाचक समाप्त हो गया है। शैली ऐसी अद्भुत है कि एक अपरिचित विषय भी सहज हृदयंगम हो जाता है।

पण्डितजी का सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उन्होंने संस्कृत, प्राकृत में निबद्ध आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान को भाषा—गद्य के माध्यम से व्यक्त किया और तत्त्व विवेचन में एक नई दृष्टि दी। यह नवीनता उनकी क्रान्तिकारी दृष्टि में है।

टीकाकार होते हुए भी पण्डितजी ने गद्य शैली का निर्माण किया। डॉ० गौतम ने उन्हें गद्य निर्माता स्वीकार किया है।[1] उनकी शैली दृष्टान्तयुक्त प्रश्नोत्तरमयी तथा सुगम है। वे ऐसी शैली अपनाते हैं जो न तो एकदम शास्त्रीय है और न आध्यात्मिक सिद्धान्तों और चमत्कारों से बोझिल। उनकी इस शैली का सर्वोत्तम निर्वाह 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में है। तत्कालीन स्थिति में गद्य भाग को आध्यात्मिक चिन्तन का माध्यम बनाना बहुत ही सूझ-बूझ और और श्रम का कार्य था। उनकी शैली में उनके चिन्तक का चरित्र और तर्क का स्वभाव स्पष्ट झलकता है। एक आध्यात्मिक लेखक होते हुए भी उनकी गद्यशैली में व्यक्तित्व का प्रक्षेप उनकी मौलिक विशेषता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पण्डित टोडरमलजी न केवल टीकाकार थे बल्कि अध्यात्म के मौलिक विचारक भी थे। उनका यह चिन्तन समाज की तत्कालीन परिस्थितियों और बढ़ते हुए आध्यात्मिक शिथिलाचार के सन्दर्भ में एकदम सटीक है।

लोकभाषा काव्यशैली में 'रामचरितमानस' लिखकर महाकवि तुलसीदास ने जो काम किया, वही काम उनके दो सौ वर्ष बाद गद्य में 'जिन-अध्यात्म' को लेकर पण्डित टोडरमलजी ने किया।

जगत के सभी भौतिक द्वन्द्वों से दूर रहने वाले एवं निरन्तर आत्मसाधना व साहित्य-साधनारत इस महामानव को जीवन की मध्य वय में ही साम्प्रदायिक विद्वेष का शिकार होकर जीवन से हाथ धोना पड़ा।

इनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये लेखक के शोध प्रबन्ध 'पण्डित टोडरमल। व्यक्तित्व और कर्तृत्व'[2] का अध्ययन करना चाहिये। इनकी भाषा का नमूना इस प्रकार है—

> "ताते बहुत कहा कहिये, जैसे रागादि मिटावने का श्रद्धान होय सो ही सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटावने का जानना होय सो ही सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसे रागादि मिटें सो ही सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है।[3]

दौलतराम कासलीवाल—महापण्डित टोडरमलजी के पश्चात् यदि किसी महत्त्वपूर्ण गद्य-निर्माता का नाम लिया जा सकता है तो वह है दौलतराम कासलीवाल। इनका उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के 'गद्य विकास' (पृ० ४११ पर) में किया है।

इनका जन्म जयपुर से लगभग १०० किलोमीटर की दूरी पर स्थित वसवा नामक स्थान पर विक्रम सं० १७४८ में हुआ था। इनके पिता का नाम आनन्दराम था। ये खण्डेलवाल जाति एवं कासलीवाल गोत्र के दिगम्बर जैन विद्वान् थे। वे जयपुर राज्य में उच्चाधिकारी के पद पर सेवारत थे। ये जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के वकील बनकर बहुत काल तक उदयपुर में रहे। उस समय की रचनाओं में इन्होंने स्वयं को नृपमन्त्री लिखा है। साधर्मी भाई ब्र० रायमलजी ने अपनी जीवन पत्रिका में तत्सम्बन्धी उल्लेख इस प्रकार किया है—

१. हिन्दी गद्य का विकास, डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, पृ० १८५ व १८८
२. प्रकाशक—पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए—४, बापूनगर जयपुर—४
३. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पंडित टोडरमल ट्रस्ट, पृ०, ३१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पीछे राणा का उदेपुर विषै दौलतराम तेरापंथी, जेपुर के जयस्यंध राजा के उकील तासूं धर्म अर्थि मिले। ताकै संस्कृत का ज्ञान नीकां, बाल अवस्था सू लें वृद्ध अवस्था पर्यन्त सदैव सौ पचास शास्त्र अवलोकन कीया और उहाँ दौलतराम के निमित्त करि दस बीस साधर्मी वा दस बीस बायां सहित सेली का बणाव बणि रहा। ताका अवलोकन करि साहि पूरै पाछा आए।"

इन्हीं राजमलजी की प्रेरणा से दौलतराम जी ने वचनिकाएँ लिखी हैं। जिनकी प्रशस्तियों में इस बात की चर्चा सर्वत्र की है।

जयपुर के प्रसिद्ध दीवान रामचन्द्र जी उनके मित्रों में से थे। उन्होंने इनसे पण्डित टोडरमलजी के अपूर्ण टीकाग्रन्थ 'पुरुषार्थसिद्ध युपाय भाषाटीका' पूर्ण करने का आग्रह किया था और उन्होंने वह टीका पूर्ण की थी। उसकी प्रशस्ति में इस बात की उन्होंने स्पष्ट चर्चा की है एवं पण्डित टोडरमलजी का बहुत ही सम्मान के साथ उल्लेख किया है—

भाषा टीका ताड परि कीनी टोडरमल्ल।
मुनिवत वृत्ति ताकी रही वाके मंहि अचल्ल॥

इन्होंने अपने कवि जीवन के आरम्भ काल में पद्य ग्रन्थ ही अधिक लिखे, किन्तु टोडरमलजी के प्रभाव के कारण वे भी गद्य की ओर झुके फलस्वरूप महान एवं विशालकाय गद्य ग्रन्थों की रचना कर डाली। इनकी गद्य रचनाओं में 'पद्मपुराण वचनिका', 'आदिपुराण वचनिका' और 'हरिवंशपुराण वचनिका' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी शामिल हैं। जिनका आज भी सारे भारतवर्ष के दिगम्बर जैन मन्दिरों में अनवरत स्वाध्याय होता है।

हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से दौलतरामजी की इन कृतियों का ऐतिहासिक महत्त्व है। इनका समीक्षात्मक अध्ययन आवश्यक है।

इनकी भाषा में प्रवाह है। वह परिमार्जित है। युग की धारा को बदल देने में समर्थ है। इनकी रचनाओं का नमूना देखने के लिये जीवन और साहित्य का परिचय प्राप्म करने के लिये डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल द्वारा सम्पादित 'महाकवि दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व और कृतित्व'[१] कृति का अध्ययन किया जाना चाहिये। इसकी भाषा का नमूना इस प्रकार है—

अथानंतर पवनंजयकुमार ने अंजनासुन्दरी को परण कर ऐसी तजी जो कबहूं बात न बूझै, सो वह सुन्दरी पति के असंभाषण तै अर कृपादृष्टि कर न देखवे तैं परम दुःख करती भई[२]। (पद्म-पुराण भाषा)

अथानन्तर—राजा जरत्कुमार राज्य त्याग करे ताके राज्य में पूजा आनन्द को प्राप्त होती भई। राजा महाप्रतापी जिनकीं ताके राज को लोग अति चाहें॥ १॥ सो जरत्कुमार ने राजा कलिंग की पुत्री परनी ताके राजवंश की ध्वजा समान वसुध्वज नामा पुत्र भया॥ २॥ ताहि राज्य का भार सौंप जरत्कुमार मुनि भये। सत पुरुषन के कुल की यही रीति है। पुत्र को राज्य देय आप चारित्र धारे॥ ३॥[३]

—**हरिवंशपुराण**

चक्रवर्तीनि में आदि प्रथम चक्री अतुल है लक्ष्मी जाके अर नाचते उछलते उत्तुंग तुरंग तिनिके खुरनिकरि चूर्ण कीए है विषस्थल जानै, तुरंगनि के खुरनिकरि उठी रेणु ताकरि समुद्र कूं श्यामता उपजावता संता प्रभासदेव कूं जीतिकारि ता थकी सारभूत वस्तु लीन्ही॥ १२६॥[४] —**आदिपुराण**

पं० जयचंदजी छावड़ा—दिगम्बर जैन समाज में सर्वाधिक सम्माननीय आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ 'समयसार' एवं उसके मर्म को प्रकट करने वाली आचार्य अमृतचन्द्र की 'आत्मख्याति' तथा 'कलशों' के समर्थ

१. महापंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २५५-५६
२. वही, पृ० २५५-५६
३. वही, पृ० २६०
४. वही, पृ० ३०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी टीकाकार पंडित जयचन्दजी छावड़ा ने हिन्दी गद्य के भण्डार को अपनी प्रौढ़ लेखनी से भरपूर भरा है। उन्होंने १५ से अधिक विशाल गद्य रचनाएँ हिन्दी साहित्य को दी हैं। जिनमें कतिपय महत्त्वपूर्ण रचनाओं के नाम हैं—

१. तत्त्वार्थसूत्र वचनिका वि० सं० १८५९
२. सर्वार्थसिद्धि वचनिका वि० सं० १८६२
३. प्रमेयरत्नमाला वचनिका वि सं० १८६३
४. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा वि सं० १८६३
५. द्रव्यसंग्रह वचनिका वि० सं० १८६३
६. समयसार वचनिका वि० सं १८६४
७. देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) वि० सं० १८६६
८. अष्टपाहुड वचनिका वि सं० १८६७
९. ज्ञानार्णव वचनिका वि सं १८६९
१०. भक्तामर स्तोत्र वचनिका वि० सं० १८७०
११. पदसंग्रह
१२. सामायिक पाठ वचनिका
१३. पत्र परीक्षा वचनिका
१४. चन्द्रप्रभ चरित द्वि० सर्ग
१५. धन्यकुमारचरित वचनिका

'सर्वार्थसिद्धि वचनिका' प्रशस्ति में उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

काल अनादि भ्रमत संसार, पायो नरभव में सुखकार।
जन्म फागई लयौ सुथनि, मोतीराम पिता के आनि ॥ ११ ॥
पायो नाम तहां जयचन्द, यह परजायतणू मकरन्द।
द्रव्यदृष्टि में देखूं जबै, मेरा नाम आतमा कबै ॥ १२ ॥
गोत छाबड़ा श्रावक धर्म, जामें भली क्रिया शुभ कर्म।
ग्यारह वर्ष अवस्था भई, तब जिन मारग की सुधि लई ॥ १३ ॥
आन इष्ट को ध्यान अयोगि, अपने इष्ट चलन शुभजोगि।
वहां दूजो मंदिर जिनराज, तेरापंथ पंथ तहां साज ॥ १४ ॥
देव धर्म गुरु सरधा कथा, होय जहां जन भाशैं यथा।
तब मो मन उमग्यो तहां चलो, जो अपनो करनो है भलो ॥ १५ ॥
जाय तहां श्रद्धा दृढ़ करी, मिथ्या बुद्धि सबै परिहरी।
निमित्त पाय जयपुर में आय, बड़ी जु सैली देखी भाय ॥ १६ ॥
गुणी लोक साधर्मी भले, ज्ञानी पंडित बहुते मिले।
पहले थे वंशीधर नाम, धरै प्रभाव शुभ ठाम ॥ १७ ॥
टोडरमल पंडित मति खरी, गोम्मटसार वचनिका करी।
ताकी महिमा सब जन करै, वाचै पढै बुद्धि विस्तरै ॥ १८ ॥
दौलतराम गुणी अधिकाय, पंडितराय राग में जाय।
ताकी बुद्धि लसै सब खरी, तीन पुराण वचनिका करी ॥ १९ ॥
रायमल्ल त्यागी गृहवास, महाराम व्रतशील निवास।
मैं हूं इनकी संगति ठानि, बुद्धितणु जिनवाणी जानि ॥ २० ॥

उक्त कथनानुसार उनका जन्म जयपुर के पास "फागी"[1] कस्बा में मोतीरामजी छावड़ा के यहाँ हुआ था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में उन्हें आध्यात्मिक रुचि जागृत हुई। तेरापंथी मन्दिर में होने वाली तत्त्वचर्चा में शामिल होने लगे।

कुछ समय बाद कारणवश जयपुर आना हुआ और यहाँ उन्होंने बहुत बड़ी सैली देखी। यहाँ बड़े-बड़े ज्ञानी पंडित गुणीजन प्राप्त हुए। वंशीधरजी पहले हो चुके थे। वर्तमान में बहुचर्चित व प्रशंसित गोम्मटसार की वचनिका

१. फागीग्राम जयपुर से ४५ किलोमीटर की दूरी पर डिग्गी—मालपुरा रोड पर स्थित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने वाले महान् बुद्धिमान पंडित टोडरमलजी, तीन पुराणों की वचनिका करने एवं राजदरबार में जाने वाले गुणी विद्वान् दौलतरामजी, गृहवासत्यागी राजमलजी एवं शीलव्रती महारामजी थे। इन सबकी संगति में रहकर उन्होंने जिनवाणी का रहस्य समझा था।

दीवान रामचंदजी से इसके अच्छे सम्बन्ध थे। उनके द्वारा आजीविका की स्थिरता पाकर उन्होंने विविध साहित्य सेवा की थी। इनके पुत्र पंडित नन्दलालजी भी अच्छे विद्वान् थे, उनसे प्रेरणा पाकर भी इन्होंने साहित्य निर्माण किया था। उनकी प्रशंसा स्वयं उन्होंने की है।

नंदलाल मेरा सुत गुनी, बालपने तै विद्या सुनी।
पंडित भयो बडौ परवीन, ताहू ने प्रेरण यह कीन ॥

इनके ग्रन्थों की भाषा सरल, सुबोध एवं परिमार्जित है, भाषा में जहाँ भी दुरूहता आयी है, उनका कारण गम्भीर भाव और तात्विक गहराइयाँ रही हैं।[1] इनके गद्य का नमूना इस प्रकार है—

> जैसे इस लोक विषे सुवर्ण अर रूपा कूं गालि एक किये एक पिण्ड का व्यवहार होय है तैसें आत्मा के अर शरीर के परस्पर एक क्षेत्र की अवस्था ही में एक पणां का व्यवहार है ऐसे व्यवहार मात्र ही करि आत्मा शरीर का एक पणा। बहुरि निश्चय तैं एक पणा नाहीं है। जाते पीला अर पांडुर है स्वभाव जिनिका ऐसा सुवर्ण अर रूपा है तिनकै जैसे निश्चय विचारिये तब अत्यन्त भिन्न पणा करि एक-एक पदार्थ पणा की अनुपस्थिति है। तातैं नानापना ही है।

पंडित सदासुखदास—पंडितप्रवर जयचन्द जी छावड़ा के बाद हिन्दी भाषा के गद्य भण्डार को समृद्ध करने वाले किसी दिगम्बर जैन विद्वान् का नाम लिया जा सकता है तो वे हैं पंडित सदासुखदास कासलीवाल। इनका जन्म जयपुर में विक्रम संवत् १८५२ तदनुसार ईसवी १७९५ के लगभग हुआ था। क्योंकि वि० सं० १९२० में रचित 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका' की प्रशस्ति में आपने अपने को ६८ वर्ष का लिखा है—

अडसठि वरष जु आयु के, बीते तुझ अधार।
शेष आयु तब शरण ते, जाहु यही मम सार ॥१७॥

आपके पिता का नाम था दुलीचन्द और वे 'डेडाका' कहलाते थे। ये सहनशीलता के धनी और संतोषी विद्वान् थे। अपना अधिकांश समय अध्ययन-मनन, पठन-पाठन और लेखन में ही लगाया करते थे।

इनसे प्रेरणा पाकर एवं अध्ययन कर प० पन्नालाल संघी, पारसदास निगोत्या जैसे योग्य विद्वान् तैयार हुए थे। इनकी विद्वत्ता और सद्गुणों की थाक दूर-दूर तक थी। आरा से परमेष्ठी शाह अग्रवाल ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' पर 'अर्थ प्रकाशिका' नामक टीका पाँच हजार श्लोक प्रमाण लिखकर इनके पास संशोधनार्थ भेजी थी। इन्होंने उसका योग्यता-पूर्वक संशोधन कर उसे ११ हजार श्लोक प्रमाण बनाकर उन्हें वापिस भेज दी थी।

वृद्धावस्था में अपने २० वर्षीय इकलौते पुत्र के स्वर्गवास के कारण कुछ टूट से गये थे। इनके शिष्य सेठ मूलचन्द सोनी वियोगजन्य दुःख कम करने की दृष्टि से इन्हें अजमेर ले गये फिर भी ये अधिक काल जीवित नहीं रहे। अन्तिम समय में अपने सुयोग्य शिष्य पन्नालाल संघी आदि को तत्त्व प्रचार करने की प्रेरणा दी जिसे उन्होंने भलीभाँति निभाया।

आपके द्वारा लिखित ग्रन्थ निम्नानुसार हैं— :

१. भगवती आराधना भाषा वचनिका वि० सं० १९०६
२. तत्त्वार्थ सूत्र लघु भाषा टीका वि० सं० १९१०
३. तत्त्वार्थसूत्र बृहद् भाषा टीका 'अर्थ प्रकाशिका' वि०सं० १९१४
४. समयसार नाटक भाषा वचनिका वि०सं० १९१४

---

१. हिन्दी साहित्य : द्वितीय खण्ड, पृ० ५०४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. अकलंकाष्टक भाषा वचनिका वि० सं० १६१५
६. मृत्यु महोत्सव
७. रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका वि० सं० १६२०
८. नित्य नियम पूजा वि० सं० १६२१

एक ऋषिमण्डल पूजा भी आपके द्वारा रचित बताई जाती है।

इनकी भाषा का नमूना इस प्रकार है :—

"संसार में धर्म ऐसा नाम तो समस्त लोक कहे हैं, परन्तु शब्द अर्थ तो ऐसा जो नरक तिर्यञ्चादिक गति में परिभ्रमण रूप दुःखते आत्माकूं छुड़ाय उत्तम आत्मीक, अविनाशी अतीन्द्रिय मोक्षसुख में धारण करै सो धर्म है। सो ऐसा धर्म मोल नाहीं आवे जो धन खरचि दान सन्मानादिक तै ग्रहण करिये तथा किसी का दिया नाहीं आवै जो सेवा उपासनाते राजी कर लिया जाय। तथा मदिर, पर्वत जल, अग्नि, देवमूर्ति, तीर्थादिकन में नाहीं धरया है, जो वहाँ जाय ल्याइये। तथा उपवासव्रत, बाह्यक्लेशादि तप में हू, शरीरादि कृश करने में हू नाहीं मिलै। तथा देवाधिदेव के मंदिरीनि में उपकरणदान मण्डल पूजनादिकरि तथा गृह छोड़ वन श्मशान में बरानेकरि तथा परमेश्वर के नाम जाप्यादिकरि धर्म नाहीं पाइये है। धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। जो पर में आत्मबुद्धि छोड़ अपना ज्ञाता द्रष्टा रूप स्वभाव का श्रद्धान अनुभव तथा ज्ञायक स्वभाव में ही प्रवर्तन रूप जो आचरण सो धर्म है।[1]"

यद्यपि गत—चार पाँच सौ वर्षों में शताधिक दिगम्बर जैन विद्वानों ने राजस्थानी हिन्दी-साहित्य के गद्य भण्डार को काफी समृद्ध किया है, उसे प्रौढ़ता प्रदान की है, उसका परिमार्जन किया है, सशक्त बनाया है तथापि स्थानाभाव के कारण यहाँ मात्र कतिपय प्रतिनिधि गद्यकारों के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का संक्षिप्त परिचय ही दिया जा सका है। मुझे विश्वास है कि उक्त संक्षिप्त विवरण भी मनीषियों को दिगम्बर जैन गद्यकारों की ओर आकृष्ट करेगा और राजस्थान जैन ग्रन्थ भण्डारों में शोध-मनन, पठन-पाठन एवं प्रकाशन को प्रेरित करेगा। □

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषाटीका, पृष्ठ २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org